मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएं — 500 ई० पूर्व से 1000 तक

मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओं का काल 500 ई० पू० से 1000 तक माना गया है। जब संस्कृत भाषा अधिक परिनिष्ठित और साहित्यिक होकर सामान्य जन-जीवन से दूर होती चली गई तो वैदिक और लौकिक संस्कृत के समानान्तर प्रवाहमान बोलियों ने लोक-व्यवहार के क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। संस्कृत के समानान्तर लोक भाषा के रूप में प्रचलित बोल-चाल की भाषा को प्राकृत कहा गया। तत्कालीन प्राकृत भाषाओं के विकास को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है —

1. प्राचीन प्राकृत या पालि या प्रथम प्राकृत (500 ई०पू० से 100 ई०पू०)
2. मध्यकालीन प्राकृत (द्वितीय प्राकृत) 100 ई० पू० से 500 ई० तक
3. परकालीन प्राकृत या अपभ्रंश (500 ई० से 1000 ई० तक)

I प्राचीन प्राकृत (पालि) — संस्कृत भाषा को जनजीवन से दूर होते देखकर गौतम बुद्ध ने अपने उपदेश जन साधारण की भाषा में दिए। यह जन साधारण की भाषा ही पालि के नाम से विख्यात हुई। पालि भाषा में बौद्ध धर्म का प्रचुर साहित्य मिलता है। महात्मा बुद्ध के उपदेशों का संग्रह "त्रिपिटक" पालि में ही है। 'त्रिपिटक' पर लिखी गई टीकाओं का विशाल साहित्य भी पालि में है। जातक साहित्य भी पालि भाषा की मूल्यवान निधि है।

पालि शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में भी मतभेद हैं। कुछ विद्वान पालि शब्द की व्युत्पत्ति पंक्ति से, कुछ पल्लि (गाँव) से, कुछ प्राकृत से, कुछ पाटलिपुत्र से मानते हैं। किन्तु ये सभी मत निराधार प्रतीत होते हैं। अन्य विद्वान 'पालि' की व्युत्पत्ति संस्कृत की पाल् धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ है रक्षा करना। इस प्रकार भगवान बुद्ध के वचनों की रक्षा करने वाली प्राकृत भाषा को ही "पालि" कहा गया है। यों तो पालि के मूल क्षेत्र मगध्य, कलिंग, कौशल, उज्जैन, मालवा, विन्ध्य प्रदेश, मध्यप्रदेश का कुछ भाग तथा शूरसेन प्रदेश रहे, तथापि महात्मा बुद्ध के उपदेशों के प्रचार प्रसार के कारण यह पूरे भारत की भाषा बन गई थी। अतः पालि की "पाल्" धातु से व्युत्पत्ति ही युक्तिसंगत प्रतीत होती है।

पालि की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं —

Scanned with CamScanner

पालि में ऋ, ॠ, ऌ, ऐ, औ, श, ष, विसर्ग (:) एवं संयुक्त व्यंजनों का लोप हो गया। ऋ, ॠ के स्थान पर रि तथा श, ष के स्थान पर स का प्रयोग होने लगा। ऐ के स्थान पर ए तथा औ के स्थान पर ओ का प्रयोग होने लगा।
जैसे — कैलाश — केलाश, गौतम — गोतम

2 पालि में ल ळ और ळ्ह वैदिक ध्वनियों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ, जबकि लौकिक संस्कृत में ये ध्वनियाँ लुप्त हो गईथी।

3 ऌ का स्थान ल ने ले लिया।

4 पालि में अघोष वर्णों का घोषीकरण हो गया। यथा काक का काग, शाकल का सागल।

5 पालि में संस्कृत की भाँति तीन लिंग रहे लेकिन वचन दो ही रहे। द्विवचन लुप्त हो गया।

6 धातुओं में आत्मनेपद का प्रयोग लुप्त हो गया, केवल परस्मैपद का प्रयोग मिलता है।

7 पालि में तद्भव शब्दों की बाहुलता है। तत्सम और देशज शब्द कम हैं।

8 संस्कृत के दस लकारों की अपेक्षा आठ लकार रह गए।

9 धातुओं का वर्गीकरण तो संस्कृत की भांति गणों में ही किया गया है, किन्तु गणों की संख्या दस से घटकर सात ही रह गई।

10 पालि में शब्द के अन्त में आने वाले हलन्त व्यंजनों का लोप हो गया। सभी शब्द स्वरान्त है। हलन्त शब्दों को अकारान्त बना दिया गया जैसे धनवत् से धनवन्त,
आत्मन् → अत्त।

11 पालि में बलाघात का प्रयोग मिलता है।

12 पालि में कहीं-कहीं द्वन्द एवं समास के कारण स्वरों के मात्राकाल में परिवर्तन हो गया। यथा सतिमती से सतीमती।

निष्कर्ष — निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पालि में संस्कृत के अनेक शब्दों को ग्रहण करते हुए भी सरलीकरण की प्रवृत्ति को अपनाया गया है। बौद्ध काल से इस भाषा को अधिक सरल बनाने का प्रयास किया गया। स्वर और व्यंजनों में सरलीकरण की प्रवृत्ति आई ही, साथ में शब्द और क्रियारूपों में सरलता का समावेश हुआ है।

Scanned with CamScanner

MA Sup.

मध्यकालीन प्राकृत भाषा — मध्यकालीन प्राकृत भाषाओं का विकास काल 100 ई॰ पू॰ से 500 ई॰ तक है। इस काल में प्राकृत भाषा ने विभिन्न प्रादेशिक भाषा के रूप में बहुमुखी विकास किया तथा अधिकतर प्राकृत भाषाओं में उच्चस्तरीय साहित्य की रचना हुई। अश्वघोष के नाटकों में प्राकृत भाषा का प्रयोग मिलता है।

प्राकृत भाषा के स्वरूप को समझने के लिए "प्राकृत" शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करना उपयोगी होगी। हेमचन्द्र आदि अधिकतर विद्वान तो यही मानते हैं कि प्रकृति का अर्थ है— संस्कृत और उससे उत्पन्न भाषा।

प्राकृत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दूसरा मत है कि 'प्रकृति' का अर्थ है स्वभाव, अतः जो जनभाषा बोलचाल के रूप में प्राकृतिक या स्वाभाविक रूप से विकसित हुई, वही प्राकृत भाषा है। इस मत के मानने वाले मानते हैं कि प्राकृत का ही संस्कारित-परिष्कृत रूप संस्कृत है। कुछ एक विद्वानों ने संस्कृत और प्राकृत में माँ-बेटी के रिश्तों की कल्पना की है।

प्राकृत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में तीसरा मत यह है कि प्राकृत न तो संस्कृत से उत्पन्न हुई और न ही प्राकृत से संस्कृत। दोनों का स्वतन्त्र विकास हुआ। संस्कृत के समानान्तर प्रचलित जनभाषाओं से ही प्राकृत का विकास हुआ। प्राकृत लोकभाषा के रूप में फलती-फूलती रही, किन्तु आज उसे जानने का आधार उसका साहित्यिक रूप ही है। अधिकतर भाषा विद्वानों ने प्राकृत के पाँच भेद स्वीकार किए हैं—

1 शौरसेनी 2 महाराष्ट्री 3 मागधी 4 अर्द्धमागधी 5 पैशाची

(1) शौरसेनी — शौरसेनी मूलतः शूरसेन प्रदेश की भाषा थी। मथुरा इसका प्रमुख केन्द्र था। शौरसेनी को ही पश्चिमी हिन्दी बोलियों की जननी माना जाता है। यह मध्यदेश की भाषा थी और संस्कृत से सर्वाधिक प्रभावित थी। शौरसेनी का प्रयोग गद्य भाषा के रूप में विशेष रूप से पाया जाता है। संस्कृत के नाटकों के विदूषक तथा स्त्री पात्र शौरसेनी का ही प्रयोग करते थे। दिगम्बर जैन मत का अधिकांश सिद्धान्त साहित्य इसी में मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि शौरसेनी प्राकृत का उद्भव पालि से हुआ तथा महाराष्ट्री प्राकृत इसी का विकसित रूप है। शौरसेनी प्राकृत की निम्न-लिखित विशेषताएं हैं—

Scanned with CamScanner

1 शौरसैनी में दो स्वरों के मध्य के त का द और थ का ध हो जाता है। यथा - भवति का होदि और यथा का जधा।

2 क्ष का 'क्ख' हो गया। यथा कुक्षि का कुक्खि, भिक्षु का भिक्खु।

3 ऋ का विकास इ में हुआ, जैसे गृद्ध - गिद्ध

4 शौरसैनी में आत्मनेपदी का लोप हो गया है, केवल परस्मैपदी का प्रयोग मिलता है।

5 न का ण हो जाता है, यथा नाथ का णाध, भगिनि का बहिणी।

6 मध्यवर्ती महाप्राण ध्वनियों ख, घ, थ, फ भ का 'ह' हो जाता है। जैसे मुख का मुह, मेघ का मेह, वधू का बहु।

II महाराष्ट्री प्राकृत - इसका सम्बन्ध मुख्यतः महाराष्ट्र से है। यह सर्वाधिक साहित्य सम्पन्न भाषा है। जिस प्रकार शौरसेनी गद्य की भाषा है, उसी प्रकार महाराष्ट्री कविता की भाषा रही है। संस्कृत के नाटकों में गद्य के भाग शौरसेनी के हैं और पद्य के महाराष्ट्री प्राकृत में हैं। राजा हाल द्वारा रचित 'गाहा सत्तसई', प्रवरसेन द्वारा रचित 'रावणबहो', वाक्यपति द्वारा रचित 'गउडबहो', हेमचन्द्र कृत 'कुमारपाल चरित' आदि प्राकृत के प्रमुख काव्य ग्रन्थ हैं। (राजशेखर) 'कर्पूरमंजरी' नाटक का गद्यभाग शौरसेनी में है और पद्य भाग महाराष्ट्री में है। आचार्य दण्डी ने अपने ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में महाराष्ट्री को सर्वोत्कृष्ट प्राकृत माना है।

महाराष्ट्री प्राकृत की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं हैं—

(1) दो स्वरों के मध्य के व्यंजन का लोप हो गया। जैसे— मुकुल → मउल, मुकुट — मउड, हृदय → हिअअ

(2) व्यंजनों के स्थान पर स्वर आने से महाराष्ट्री प्राकृत एक स्वरबहुला एवं संगीतात्मक भाषा बन गई।

(3) महाप्राण व्यंजन ध्वनियों का ह में परिवर्तन हो गया— अथ — अह, मेघ — मेह, शाखा → शाहा, गाथा — गाहा।

(4) श, ष, स के स्थान पर ह का प्रयोग होता था। यथा— दश → दह, पाषाण — पाहाण, दिवस → दिअह।

5 क्ष को 'च्छ' हो गया। कुक्षि → कुच्छि, इक्षु - इच्छु

6 मध्यगत 'य' का लोप हो गया। वियोग — विओअ।

III मागधी प्राकृत — इसका व्यवहार क्षेत्र मगध था, जो उसके से बंगाल तक फैला हुआ था। कुछ विद्वानों से इसे गौडी नाम से भी पुकारा है। मागधी प्राकृत का प्राचीन रूप अश्वघोष

तथा कालिदास के नाटकों तथा शूद्रक के नाटक मृच्छकटिक में देखने को मिलता है। मागधी से ही भोजपुरी, मैथिली, बंगला उड़िया, असमिया आदि भाषाएं विकसित हुई हैं। मागधी की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है—

(1) मागधी में 'र' ध्वनि का सर्वथा अभाव है। 'र' के स्थान पर सर्वत्र 'ल' का प्रयोग होता है, यथा - राजा → लाजा।

(2) स और ष का 'श' हो जाता है। सप्त - शत्त, पुरुषः → पुलिशे

(3) मध्यगत च्छ का 'श्च' तथा 'त' का 'द' हो जाता है। जैसे—
गच्छति → गश्चदि।

4 क्ष के स्थान पर 'श्क' हो जाता है। जैसे - पक्ष → पश्क

5 ज के स्थान पर य और 'त' के स्थान पर द हो जाता है। यथा जानति → याणदि।

अर्द्धमागधी प्राकृत → अर्द्धमागधी का प्रयोग-क्षेत्र प्राचीन कोसल या अवध का निकटवर्ती क्षेत्र है जो शौरसेनी और अर्द्धमागधी के क्षेत्रों के मध्य स्थित है। अर्द्धमागधी प्राकृत में मागधी और शौरसेनी की विशेषताओं का मिश्रण मिलता है। भगवान महावीर के धर्मोपदेश अर्द्धमागधी में अंकित हैं। यह साहित्यिक दृष्टि से भी सम्पन्न रही है। इनमें रचित साहित्य गद्य और पद्य दोनों में है। पूर्वी हिन्दी का विकास अर्द्धमागधी प्राकृत से ही विकसित हुआ है। इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं→

(1) अर्द्धमागधी में श, ष ध्वनियों का 'स' में परिवर्तन हो गया। यथा श्रावक → सावग, एषः → एसो।

(2) अर्द्धमागधी में दन्त्य ध्वनियां मूर्धन्य हो गई। यथा - स्थान — ठविण, स्थित → ठिय।

(3) स्वरों के बीच स्पर्श व्यंजन ध्वनियों का लोप हो गया है और उनका स्थान 'य' ध्वनि ने ले लिया है। यथा सागर - सायर, वचन - वयण

4 क ध्वनि ग में बदल जाती है, यथा श्रावक - सावग।

5 गद्य और पद्य की अर्द्धमागधी में भी कुछ अन्तर है। गद्य में मागधी के समान प्रथमा एकवचन में ए और कविता में शौरसेनी के समान ओ हो जाता है। यथा पुरुष → पुरुसे तथा पुरुसो।

पैशाची प्राकृत — पश्चिमोत्तर भारत की भाषा पैशाची प्राकृत

* सम्राट अशोक के शिलालेखों की मूलभाषा अर्द्धमागधी है।

6 चवर्ग के स्थान पर कहीं-कहीं तवर्ग का प्रयोग देखा जाता है। जैसे - चिकित्सा → तेइच्छा

Scanned with CamScanner

थी। कदाचित कश्मीर के पास रहने वाली पिशाच जाति थी जिसका महाभारत में उल्लेख हुआ है। उनी की भाषा को पिशाची कहा गया। गुणाढ्य नामक कश्मीरी कथाकार की प्रख्यात रचना 'बृहत्कथा' पैशाची में ही लिखी गई थी। पंजाब और कश्मीर की लहंदा' भाषा का पैशाची से ही विकास हुआ। पैशाची की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं—

(1) पैशाची में सघोष ध्वनियों के अघोषीकरण की प्रवृति पाई जाती है अतः शब्द का मध्यवर्ती तथा अन्तिम ग 'क' में बदल जाता है। यथा – गगन → गकन, नगर → नकर, इसी प्रकार सघोष ज अघोष ध्वनि 'च' में बदल जाती है जैसे राजा → राचा।

(2) ष ध्वनि श या स में परिवर्तित हो गई, यथा— विषमः – विसमो, तिष्ठति → चिस्तदि।

(3) पैशाची प्राकृत में र का ल और ल का र हो जाता है। यथा कुमार → कुमाल, रुधिर → ~~रुधिल~~ लुधिर, रुद्र → लुद्द।

(4) मध्य में अ, इ, उ के प्रयोग के रूप में स्वर का समावेश होता है, जैसे— कष्ट → कसट
भार्या → भारिया
स्नान → सिनान

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राकृत भाषाएं भी संस्कृत की भांति श्लिष्ट योगात्मक हैं। प्राकृतों में संस्कृत का व्याकरणिक कसाव शिथिल हो गया है। शब्द रूपों और धातुरूपों की संख्या कम हो गई है। भाषा संयोगात्मक से कुछ वियोगात्मक की दिशा में अग्रसर हुई है। प्राकृत भाषाओं में संस्कृत के द्विवचन का अभाव है। इसी प्रकार संस्कृत के आत्मनेपद का भी प्राकृतों में अभाव है केवल परस्मैपद का व्यवहार हुआ है। प्राकृत भाषाओं में संस्कृत के तत्सम शब्दों का तद्भवीकरण हो गया है।

Scanned with CamScanner